ॐ

अथर्ववेदीय

माण्डूक्य-उपनिषद्

(भाषाभाष्य तथा विवरणसहित)

लेखक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
साहित्यवाचस्पति, गीतालंकार
अध्यक्ष— स्वाध्याय मण्डल, आनंदाश्रम,
किल्ला-पारडी, (जि. सूरत)

मूल्य आठ आने

ॐ

अथर्ववेदीय

माण्डूक्य–उपनिषद्

(भाषाभाष्य विवरणसहित)

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

साहित्यवाचस्पति, गीतालंकार

अध्यक्ष— स्वाध्याय मण्डल, आनंदाश्रम,

किल्ला-पारडी, (जि. सूरत)

प्रथमवार

संवत २००८, शक १८७४, सन् १९५२

मूल्य आठ आने

माण्डूक्य उपनिषद् की

भूमिका

यह अथर्ववेदीय उपनिषद् है। माडूक्य शाखाके तत्त्वज्ञानियोंने यह ज्ञान अपने जीवनमें अनुभव करनेके बाद प्रकाशित किया। तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे इस उपनिषदकी श्रेष्ठता सर्वसंमत है। इस उपनिषद्के ज्ञानका अनुभव स्वयं पाठक भी ले सकते हैं। यही इसकी विशेषता है।

मण्डूक अथवा माण्डूक्य ऋषि मण्डलीके विषयमें कुछ भी ज्ञान कहीं भी मिलता नहीं है। इसलिये इस विषयमें कुछ भी लिखना असंभव है।

इस उपनिषद् पर अनेक आचार्योंके भाष्य हैं और श्री गौड पादाचार्यजी की कारिकाएं हैं। इन कारिकाओंमें इस उपनिषद् के तत्त्वज्ञानका अच्छा विवरण किया गया है। इस उपनिषद् का मनन करनेसे पाठकोंको आत्मा-के संबंधके निश्चित वैदिक तत्त्वका उत्तम ज्ञान हो सकता है। यह तो केवल १२ मंत्रोंका ही सबसे छोटा उपनिषद् है, पर इसमें मनुष्यके दैनिक अनुभवमें आनेवाले जाग्रति-स्वप्न-सुषुप्तिके अनुभवोंका विचार करके आत्मा कहां कैसा और क्या कार्य करता है यह दर्शाया है और आत्माका परिचय कराया है। प्रत्येक पाठक इस ज्ञानका अपने दैनिक व्यवहारमें अनुभव देख सकते हैं और सचाई की परीक्षा भी कर सकते हैं। अब इस उपानिषद् का संक्षिप्त आशय देखिये—

माण्डूक्य उपनिषद्का आशय।

१ यह जो सब विश्व दीख रहा है उसका वाचक ओंकार है। भूत वर्तमान और भविष्यमें जो था, है और होगा, वह सब

❀

ओंकार ही है। इसी तरह जो इन तीनों कालोंसे परे है, वह भी सब ओंकार ही है, अर्थात् ओंकार ही इस सबका वर्णन करता है।

२ यह सब विश्व ब्रह्म है, यह आत्मा भी ब्रह्म ही है, और यह आत्मा चार अवस्थाओंमें कार्य करता है।

३ जाग्रति में यह आत्मा बाह्य विश्वमें अपनी प्रज्ञाको प्रयुक्त करता है, इस समय "सिर-नेत्र-कान-प्राण-वाणी-पेट-पांव" ये सात अंग कार्य करते हैं। इन अंगोंसे तथा अन्यान्य अवयवोंसे यह इस विश्वमें कार्य करता है। शरीरके सभी अवयव इन सात अंगोंके साथ कार्य करते हैं। इसी तरह पांच ज्ञानेन्द्रिय; पांच कर्मेन्द्रिय, पांच प्राण और अन्तःकरण चतुष्टय ये उन्नीस इसके भोगके साधन हैं, जिनसे यह इस विश्वका भोग करता है। इस समय इसके भोग स्थूल होते हैं। यह सब विश्वका नेता है और विश्वका संचालक आत्मा भी यही है।

४ स्वप्नमें यही आत्मा कार्य करता है, इस समय इसकी प्रज्ञा अन्दरही अन्दर कार्य करती है। इस समय इसका बाहर का कार्य बंद होता है और अन्दरका कार्य शुरू होता है। पूर्वोक्त सात अंग और उन्नीस मुख इस समयमें भी कार्य करते हैं और इनसे यह सूक्ष्म भोग भोगता है। इस समय इसका अपना निज तैजस स्वरूप व्यक्त होता, जिस तेजसे इस समय यह स्वप्न देखता है।

५ इसके पश्चात् यह आत्मा गाढ निद्रामें जाता है, इस समय यह कुछ भी कामना नहीं करता, कुछ स्वप्न भी नहीं देखता। इस अवस्थाको सुषुप्ति कहते हैं। इस समय इसकी सब प्रज्ञा एक अत्यंत आंतरिक केन्द्रमें केन्द्रीभूत होती है, यह प्रज्ञाका ही केन्द्र इस समय होता है, यह आनन्दमय आत्मा इस समय केवल निज आनन्दका भोग करता है, चैतन्य इसका स्वरूप

है, अतः इसको प्राज्ञ कहते हैं।

६ यह सर्वेश्वर, यही सर्वज्ञ और यही अन्तर्यामी है, सब भूतों-की उत्पत्ति और प्रलय इसीसे होते हैं। इसकी जाग्रति विश्वोत्पत्ति है और सुषुप्ति विश्वका प्रलय है। जाग्रति और स्वप्नके सब दृश्योंका प्रलय सुषुप्तिमें होता है और पुनः जाग्रति होने पर सब व्यवहारका उदय होता है।

७ इन तीन अवस्थाओंका अनुभव करनेवाला जो आत्मा है वह स्वरूपसे इन तीनों अवस्थाओंसे विभिन्न है, वह न अन्दर की प्रज्ञावाला है और न बाहरकी प्रज्ञावाला है, अथवा न अन्दर-बाहर की दोनों प्रज्ञावाला है, न वह प्रज्ञाका केन्द्र है, न स्वयं प्रज्ञावाला है और नाहीं प्रज्ञारहित है। इस शुद्ध आत्माका वर्णन नहीं किया जा सकता। यह अदृश्य, अवर्णनीय, अग्राह्य, अलक्षण, अचिन्त्य, अतर्क्य, एकात्मका प्रत्यय देनेवाला, प्रपञ्चको अपनेमें समेटनेवाला, शान्त, शिव, मंगल, अद्वैत अर्थात् एक ही एक है, यही चतुर्थ अवस्था है और यही आत्मा है।

८ यह आत्मा अ-उ-म-अर्धमात्रा इन ओंकारकी चार मात्राओंसे बताया जाता है और क्रमशः यह जाग्रति-स्वप्न-सुषुप्ति-तुर्या इन चार अवस्थाओंमें कार्य करता है।

९ जाग्रतिकी अवस्थामें यह विश्वका नेता आत्मा अकारसे बताया जाता है। इस अवस्थामें यह सब विश्व व्यापता है, सब में आदि प्रथम अथवा मुख्य होता है और सब कामनाओं-को प्राप्त करता है।

१० स्वप्नकी अवस्थामें यह तैजस स्वरूप आत्मा उकारसे बताया जाता है। इस आन्तरिक तैजस शक्तिसे यह उत्कर्षको प्राप्त करता है, दोनों पक्षोंको जोडता है, विपक्षियोंमें मिलान करता है, ज्ञानका उत्कर्ष करता है; समबुद्धिसे युक्त होता है और इसके वंशमें कोई अज्ञानी उत्पन्न नहीं होता। इतना इसका प्रभाव होता है।

११ सुषुप्ति अवस्थामें यह केवल अपने निज ज्ञानस्वरूप में रहता है, आनन्द प्राप्त करता है, सबको मापता है, सबको एकरूपमें मिलाता है। अकेला एक ही होता है।

१२ इसकी चतुर्थ अवस्था स्वरूपावस्था है, वह अवर्णनीय, अव्यवहार्य, प्रपंचमें शान्ति करनेवाली; शिवमंगलमय, आत्मस्वरूप है। इस समय आत्मा आत्मामें मिल जानेके समान यह सब आत्माही आत्मामें प्रविष्ट होता है।

यह माण्डूक्य उपनिषद्‌का सार है। इसका भाव यह है कि (एकात्मप्रत्यय सारं) सबका आत्मा एक है और वह शरीरमें जाग्रति, स्वप्न, सुषुप्तिका अनुभव लेता और कार्य करता है। इस तत्त्वज्ञानका परिचय सबको होना चाहिये। इस तत्त्वज्ञानसे यह सिद्ध हुआ है कि शरीरकी दृष्टिसे सब की भिन्नता है, परंतु आत्माकी दृष्टिसे सबकी एकता है। परमात्मा, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, पञ्चतन्मात्र, पञ्चमहाभूत, सृष्टि इतने पदार्थ यहां हैं। अहंकारके पश्चात् विभेद उत्पन्न होता है, तब तक सबकी एकता है।

स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण ये देह मनुष्यके हैं। इनमें स्थूल और सूक्ष्म ये देह प्रत्येकके विभिन्न हैं, और कारण तथा महाकारण ये देह सबके एक हैं। इस तरह कारण देहसे सबकी एकता और स्थूल देहसे सबकी विभिन्नता है। यह सब समझना चाहिये।

जाग्रति, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्या इन चार अवस्थाओंमें जाग्रत् और स्वप्नमें भिन्नताका अनुभव है और सुषुप्ति तथा तुर्यामें एकताका अनुभव है। यही यहां बताया है—

	विभिन्नताका अनुभव	एकत्वका अनुभव
१ अवस्था—	जाग्रति— स्वप्न	सुषुप्ति—तुर्या
२ देह—	स्थूल— सूक्ष्म	कारण—महाकारण
३ तत्त्व—	तन्मात्रा— पंच महाभूत	प्रकृति—महत्तत्त्व

जैसे नगरमें बिजली होती है, वह सब घरोंमें एक होती है, पर घर

घरमें जो विद्युद्दीप होते हैं वे विभिन्न शक्तिके होते, किसी एकके टूटनेपर विद्युत्में कुछ भी न्यूनाधिक नहीं होता, वैसा यह है।

प्रत्येक मनुष्यका व्यावहारिक अनुभव यह है कि प्रत्येक मनुष्य दूसरेसे विभिन्न है, प्रत्येक का रहन सहन, भोजन आच्छादन विभिन्न है, इस लिये प्रत्येक व्यक्ति वस्तुतः पृथक् सत्तावाली है। मनुष्यका यह व्यावहारिक अनुभव है। पर इस उपनिषद्ने, तथा अन्यान्य उपनिषदोंने भी, यह स्पष्ट कर दिया है कि, सर्वभूतान्तरात्मा--प्रकृति--महत्तत्त्व की दृष्टिसे सबकी एकता है और स्थूल-शरीर-मनकी दृष्टिसे सबकी विभिन्नता है। जाग्रति-स्वप्नावस्थामें विभिन्नता और सुषुप्ति तुर्यामें एकात्मता है। इस तरह एकता और विभिन्नताके अनुभव अवस्थान्तरके अनुभव हैं। यह उपनिषच्छास्त्रकी दृष्टि है। यह दिव्यदृष्टि है, अतः इसको जानना, समझना और अनुभवमें लाना चाहिये।

तुर्यावस्थामें एकत्व

मंत्र ७ में " एकात्मप्रत्ययसारं, अद्वैतं " तथा १२ वें मंत्रमें " अद्वैतः " कहा है। ये वर्णन आत्माकी एकताका प्रतिपादन करते हैं। ईशोपनिषद्में भी कहा है कि " सर्वाणि भूतानि आत्मा एवाभूत्— एकत्वमनुपश्यतः। " (मं० ९) सब भूत आत्मा हो गये, यह एकत्व दर्शन है, अन्यान्य उपनिषदोंमें भी आत्माकी एकताही वर्णन की है, यह एकता " आत्मा--प्रकृति--महत्तत्त्व " तक है, इसके पश्चात् ' अहंकार ' उत्पन्न होकर विभिन्नता उत्पन्न करता है, अर्थात् अहंकारके कारण विभेद होते हैं। जागृतिके मनके कारण भेदका अनुभव होता है।

ज्ञानका विश्वव्यवहारपर परिणाम

उपनिषद्के ज्ञानविज्ञानका मानवी व्यवहार पर जो परिणाम हो सकता है, वह यहां देखने योग्य है। बहुतसे लोग भ्रमसे ऐसा मानते हैं कि उपनिषदोंका ज्ञान मनुष्योंको जागतिक व्यवहारसे निवृत्त करता है और विश्वव्यवहार इससे बंद हो जाता है। पर यह विचारधारा भ्रामक है और

सत्य नहीं है। सब उपनिषदोंमें इस माण्डूक्य उपनिषद्को विशेषतया 'निवृत्तिमार्गी उपनिषद्' कहते हैं, अतः इसका विचार अब करेंगे। इस उपनिषदमें जो तत्त्वज्ञान कहा है उसका फल इसी उपनिषदके मन्त्रोंमें कहा है, वह फल देखनेसे इसमें पता लग जायगा कि यह उपनिषद् अपने ज्ञानसे जगत्में क्या करना चाहता है, देखिये इस ज्ञानके ये फल यहां कहे हैं—

१ आप्तिः – यह ज्ञानी व्यापता है, ज्ञानी शिष्योंमें अपने ज्ञानसे व्यापता है, वीर अपने शौर्यसे राष्ट्रको घेरता है, सुरक्षित रखता है। सब सुखसाधन प्राप्त करता है।

२ आदिमत्वं — प्रथम स्थानके लिये योग्य होता है, पहिला होता है, आदिम बनता है, सबसे उच्च होता है।

३ आप्नोति ह वै सर्वान् कामान्— सब कामनाओंको प्राप्त करता है, शुद्धमार्गसे सब भोगोंको प्राप्त करता है।

४ आदिः भवति — सबमें आदि होता है, प्रथम स्थानको सुभूषित करता है।

५ वैश्वानरः — सबका नेता होता है, सबका संचालक सबका नायक होता है। (मंत्र ९)

६ तैजसः — तेजस्वी होता है।

७ उत्कर्षः — उत्कर्ष प्राप्त करता है, अभ्युदयका साधन करता है, जगत्में उन्नति प्राप्त करता है।

८ उभयत्वं — दो पक्षोंमें मेल करता है, दो दलोंका संमिलन करता है, विरुद्ध दलोंमें एकत्व निर्माण करता है। संघटन करता है।

९ ज्ञानसंततिं उत्कर्षति — ज्ञानविज्ञानका उत्कर्ष करता है। ज्ञानसे मानवोंका उत्कर्ष करता है, विविध प्रकारके ज्ञानोंका मानवी समाजमें उत्कर्ष करता है।

१० समानः भवति — समदृष्टि होता है, सबको समदृष्टिसे देखता

है, समभावसे बर्ताव करता है, इसीलिये यह दो दलोंमें प्रेम निर्माण कर सकता है।

११ अस्य कुले अब्रह्मवित् न भवति — इसके कुलमें अज्ञानी पुरुष नहीं होता है, इसके वंशमें ज्ञानी पुरुष निर्माण होते हैं, (मं० १०)

१२ प्राज्ञः— यह ज्ञानी विशेष ज्ञानी होता है।

१३ मितिः — यह मापता और तोलता है, सबका यथायोग्य मापन करता है, सबका परिमाण करता है। ' मिनोति इदं सर्वं ' इस सबका मापन करता है।

१४ अपीतिः भवति — अन्ततक पहुंचाता है, एकीभावको प्राप्त-करता है। (मं० ११)

ये फल इस उपनिषद्के ज्ञानसे प्राप्त होनेवाले हैं। इनमेंसे प्रत्येक फल राष्ट्रीय उत्कर्षकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है। पहिला होना, सब भोग न्याय्य-मार्गसे प्राप्त करना, विश्वका नेता बनना, ज्ञान परंपराको अविच्छिन्न रखना, उत्कर्षका साधन करना, विपक्षियोंमें प्रेम बढाकर उनकी एकता करना, सम दृष्टिसे व्यवहार करना, कुलमें उत्पन्न होनेवाले पुरुष ज्ञानी ही हो ऐसा प्रबंध करना ये सभी व्यवहार जगद्व्यवहारकी शुद्धिके हैं। पाठक विचार करेंगे तो उनको पता लग जायगा कि यहां पृथ्वीपर ब्रह्मानन्दका साम्राज्य फैलानेवाला यह कार्यक्रम है। यह मनुष्यको विश्व व्यवहारसे हटाता नहीं, इतना ही नहीं, परंतु यह ज्ञान मनुष्यको विश्वसेवाके व्यवहारमें नियुक्त करता है, विश्वव्यवहारको शुद्ध और पवित्र करता है, तथा सब मानवोंको ज्ञान और आनन्द देकर कृतार्थ करता है। अर्थात् यह उपनिषदिक ज्ञान मनुष्योंको अकर्मण्य नहीं बनाता, विश्वव्यवहारसे निवृत्त नहीं करता, प्रत्युत विश्वको ब्रह्मका रूप बतलाकर विश्वव्यवहारकोही ब्रह्मव्यवहार बनाकर, सभी व्यवहारोंको अतिपवित्र, शुद्ध और आनन्दपूर्ण करता है। इसलिये ही सब ज्ञानी कहते हैं कि यह ज्ञान मानवोंका कल्याण करनेवाला है। पाठक इन फलोंका विचार जागतिक सुधारकी दृष्टिसे करें और इस फलसे जानें कि जगद्व्यवहार किस तरह इससे सुधर सकता है।

शिव और अद्वैत

यह आत्मा सबका एक है, कल्याणस्वरूप है और यहां द्वैतभाव नहीं है। इसलिये हमारे व्यवहार शुद्ध पवित्र और द्वैतभाव रहित होने चाहिये। इनमें विभेद, अशुद्धता और द्वन्द्वभाव नहीं होना चाहिये। द्वैत, द्वन्द्व, अशिवत्वके कारण नाना प्रकारके झगडे और युद्ध होते हैं। जिस समय व्यवहारमें शुचिता, शिव भाव, निर्द्वन्द्वभाव आजायगा, तब येही जागतिक व्यवहार पवित्र होंगे और ब्रह्मरूप हो जांयगे, तब ये अपूर्व आनन्द देनेवाले हो जायंगे।

राजा-प्रजा, मालक-मजूर, ज्ञानी-अज्ञानी, शिक्षित-अशिक्षित इस तरहके अनेक द्वन्द्व इस जगतमें हैं। ये द्वन्द्वसे बतानेवाले सब पदार्थ एक ही ब्रह्मतत्वके रूप हैं, राजा-प्रजा एकही ब्रह्मतत्त्वके दो रूप हैं, इसी तरह अन्य द्वन्द्व भी एक ही ब्रह्मतत्त्वके दो पहलू हैं, सबमें एकही जीवन संचारित हो रहा है, ऐसा देखना यह दिव्य दृष्टि है। इस दृष्टिसे समभाव उत्पन्न होता है (समानः भवति) और यह समभाव निर्द्वन्द्वभावको स्थापन करके सुयोग्य व्यवहार कराता है। उक्त दो प्रकारके लोगोंमें समभावका, ब्रह्मभावका समव्यवहार होने लगा, तो उनके अन्दरका संघर्ष बंद होगा और ये दोनों आपसके परस्परके सहायक बनेंगे और इससे दोनोंकी उन्नति होगी। आज ये दोनों परस्परको खानेका यत्न कर रहे हैं वेही इस ज्ञानसे परस्परकी सहायता करने लगेंगे, जिससे इन दोनोंमेंसे द्वन्द्वभाव दूर होगा, द्वेष हटेगा, वैर और युद्ध बंद होगा, दोनों एक होकर जीवनमें अपना कर्तव्य करेंगे, और ये दोनों परस्परकी न्यूनताको दूर करके परस्परके पूरक और सहायक होंगे। इस ज्ञानसे इस तरह इस पृथ्वीपर स्वानन्द-साम्राज्य होगा। यही सच्चे ज्ञानका सुफल है।

आज विश्वमें युद्ध भडक रहे हैं, उन युद्धोंको दूर करने और वहां स्थायी

शान्ति स्थापन करनेके लिये यह तत्त्वज्ञान ही समर्थ है। इसलिये इसका प्रचार होना चाहिये। पाठक इस ज्ञानका अनुभव लेकर इसका प्रचार करें।

स्वाध्याय-मण्डल
' आनंदाश्रम '
पारडी (जि० सूरत)

लेखक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
अध्यक्ष—स्वाध्याय-मण्डल

माण्डूक्य उपनिषदका

शान्तिमन्त्र

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभि-
र्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

" हे देवो ! हम कानोंसे कल्याणकारक वचन सुनें । हे पूज-नीय देवो ! हम आंखोंसे कल्याणकारक दृश्य देखें । जबतक हमारी आयु होगी तबतक सुदृढ शरीरावयवोंसे युक्त होकर, हम दिव्य विबुधोंके गुणोंका वर्णन गाते रहें ॥ "

व्यक्तिमें शान्ति, राष्ट्रमें शान्ति और विश्वमें शान्ति हो ।

× × ×

सूचना । – इस मन्त्रका विवरण प्रश्नोपनिषद्के प्रारंभमें पाठक देखें । कईयोंके मतसे 'स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः' यह मन्त्र भी इस उपनि-षद्का शान्ति मन्त्र है, जो इस मन्त्रके साथ पढा जाता है । इसका विवरण भी प्रश्नोपनिषद्के प्रारंभमें है । वहीं वह पाठक देखें ।

ॐ

अथर्ववेदीय

माण्डूक्य उपनिषद्

ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं, तस्योपव्याख्यानं, भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव, यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ॥ १ ॥ सर्वꣳ ह्येतद्ब्रह्म; अयमात्मा ब्रह्म, सोऽयमात्मा चतुष्पात् ॥ २ ॥

(ओम् इति एतत् अ-क्षरं इदं सर्वं) ओं यह अक्षर ही सब कुछ है और यह (अ-क्षर) अविनाशी है, (तस्य उपव्याख्यानं) उसका व्याख्यान यह है - (भूतं भवत् भविष्यत् इति सर्वं ओंकारः एव) भूत, वर्तमान और भविष्य कालमें जो कुछ था, है और होगा, वह सब ओंकार ही है, (यत् च अन्यत् त्रिकालातीतं तत् अपि ओंकारः एव) जो और कुछ तीनों कालोंसे परे है वह भी ओंकार ही है ॥ १ ॥

(हि एतत् सर्वं ब्रह्म) निश्चयसे यह सब ब्रह्म है, (अयं आत्मा ब्रह्म) यह आत्मा ब्रह्म है, (सः अयं आत्मा चतुष्पाद्) वह यह आत्मा चार पादवाला है ॥ २ ॥

तीनों कालोंमें एक आत्मा

(१) यह सब (इदं सर्वं) जो इस विश्वमें है वह सब ओंकार ही है। इस विश्वमें कुछ पदार्थ आंखसे दीखते हैं, कुछ पदार्थ अन्य इंद्रियोंसे जाने जाते हैं, कुछ स्थूल हैं कुछ सूक्ष्म हैं, अर्थात् यह जो स्थूल सूक्ष्म विश्व है

वह ओंकार ही है। विश्वका अर्थ ओंकार और ओंकारसे विश्व जाना जाता है। 'ओं' का अर्थ परब्रह्म, ब्रह्म, परमात्मा, आत्मा, शुद्ध ब्रह्म, शबल ब्रह्म तथा यह सब स्थिरचर विश्व है। जो जाना जाता है वह सब ओंकार ही है।

ओंकार 'अ-क्षर' है अर्थात् यह शब्द है जिसका अर्थ अविनाशी है। यह विश्व बदलता है इसलिये इसका नाम अक्षर कैसा हो सकता है, यह शंका यहां हो सकती है। पर ब्रह्म अथवा आत्मा तो अविनाशी है ही। इसके अविनाशी होनेमें किसीको कुछ भी शंका नहीं हो सकती। इस आत्मासे अथवा इस ब्रह्मसे होनेवाला यह विश्व है, जैसा सुवर्णका आभूषण वैसा ब्रह्मसे विश्व होता है। इसलिये ब्रह्मका अविनाशी भाव इसमें भी है। प्रवाहरूपसे यह अविनाशी है।

जो भूतकालमें विश्व था, जो वर्तमान कालमें है और जो भविष्यकालमें विश्व होनेवाला है, तथा इन तीनों कालोंसे भी परे जो भी कुछ आत्मा है, महत्तत्त्व आदि है, वह सब इस ओंकारसे ही बोधित होता है। यह सब ओंकार ही है। अर्थात् ओंकारसे ब्रह्म, जीव, आत्मा, प्रकृति, सृष्टि, विश्व इस सबका बोध होता है और कोई वस्तु इससे छोडी नहीं जाती। सब वस्तुओंका बोध ओंकारसे होता है।

श्रीमद्भगवद्गीताके ७ वें अध्यायमें कहा है कि 'वासुदेवः सर्वं' (गी. ७।१९) वासुदेवही यह सब है। तथा इसी सप्तम अध्यायके प्रारंभमें ही कहा है कि "पृथिवी, आप, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार तथा जीव" यह नौ प्रकारका (मे ईश्वरस्य नवधा प्रकृतिः) ईश्वरका शरीर ही है। जहां ये नौ प्रकारके तत्त्व होंगे, वह परमेश्वरका शरीर है ऐसा समझना योग्य है। इसीका अर्थ (सर्वं ओंकारः) सब ओंकार ही है, सब वासुदेव ही है, सब ब्रह्म ही है अथवा सब आत्मा ही है। इस उपनिषद्के ये वचन अत्यंत स्पष्ट हैं इसलिये इनके अधिक विवरणकी आवश्यकता नहीं है। इसी उपनिषदमें आगे इसीका विवरण आयेगा।

(२) यह सब (सर्वं हि एतत् ब्रह्म) ब्रह्म ही है। जो यह विश्व है वह ब्रह्म ही है। ब्रह्मसे भिन्न यहां कुछ भी नही हैं। विश्वमें जो भी है वह सब ब्रह्मका ही रूप है। गीताके ११ वें अध्यायमें 'विश्वरूप दर्शन' का विषय है। उसका अर्थ यह विश्व ब्रह्मका रूप है, वह कैसा है वह इस अध्यायमें दर्शाया है। वही विषय इस (एतत् सर्वं ब्रह्म) 'यह सब ब्रह्म है' इस वचनसे कहा है। जो भी वस्तुमात्र यहां है वह ब्रह्मका रूप है। पाठक इस विषयको भगवद्गीता पुरुषार्थ बोधिनी टीकामें अध्याय ७ और ११ का विवरणमें देखे।

अचेतन और चेतन

अब यहां ऐसी शंका आती है कि इस विश्वमें अचेतन और चेतन ऐसे दो पदार्थ दीखते हैं, तो क्या चेतन और अचेतन ये दोनों रूप उस ब्रह्म के हैं ? उत्तरमें निवेदन है कि हां ऐसा ही है। (एतत् सर्वं ब्रह्म, अयं आत्मा ब्रह्म) यह सब ब्रह्म है और यह आत्मा भी ब्रह्म है। अर्थात् जड और चेतन जो भी है वह ब्रह्मका ही रूप है।

व्यष्टि समष्टिमें एकजीवन

शरीरमें स्थूल-शरीर और चेतन जीवात्मा, तथा विश्वमें विश्वशरीर और उसमें रहनेवाले परमात्मा, यह सब ब्रह्मका रूप है। यहां व्यष्टि समष्टि मिलकर एक ब्रह्म है ऐसा स्पष्ट कहा है। जैसा बृहत् आकाश, घरका आकाश और घडेमें आकाश ये एक ही हैं, वैसा ही परमात्मा का विश्व शरीर, राष्ट्र शरीर--ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र और एक व्यक्तिका शरीर यह एक ही जीवन है। परमात्माके विश्वदेहमें राष्ट्र और राष्ट्रके चातुर्वर्ण्य देहमें व्यक्ति है और इन सबका एक ही आदिकारण ब्रह्म है। इन सबका एक ही जीवन है।

यह आत्मा चार पांववाला है, यह चार विभागोंसे प्रकट होता है, अथवा इसकी चार अवस्थाओंमें अवस्थिति है। इसका वर्णन आगे देखिये और इसका अनुभव भी लेते जाइये-

*

आत्माके चार पाद

जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्ताङ्गः एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ॥ ३ ॥

(जागरति-स्थानः बहिः-प्रज्ञः) जाग्रत् अवस्थावाला और जिसकी प्रज्ञा बाहरकी ओर होती है, (सप्ताङ्गः एकोनविंशति-मुखः) यह सात अङ्गोंवाला और उन्नीस मुखोंवाला (स्थूल-भुक् वैश्वानरः प्रथमः पादः) स्थूलका भोग करनेवाला विश्वका नेता यह इस आत्माका प्रथम पाद है ॥ ३ ॥

आत्माकी पहिली अवस्था " जाग्रति "

(३) **जाग्रत् अवस्था**— हम सबके अनुभवमें आनेवाली जाग्रत अवस्था, यह आत्माकी एक अवस्था है। इसको सब जानते हैं, प्रत्येक प्राणी इसी अवस्थामें कर्म करता है। जागतिक व्यवहार इसी अवस्थामें होते हैं। वैयक्तिक, कौटुंबिक, राष्ट्रीय और राष्ट्रान्तरीय व्यवहार, शान्तिके अथवा युद्धोंके जो होते हैं, वे आत्माकी इस जाग्रत् अवस्थामें हो रहे हैं।

इस समय इसकी (बहिः-प्रज्ञः) प्रज्ञा बाहेरकी ओर झुककर कार्य करती है। जगत् के अन्दर, अपने सब इंद्रियोंकी बाहर प्रवृत्ति करके यह आत्मा इस समय कार्य करता है। यही शान्ति स्थापनाका इच्छुक है और यही युद्धकी प्रवृत्ति बढा रहा है।

आत्माके सात अङ्ग

आत्माके सात अंग इस तरह वर्णन किये हैं—

तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्व-रूपः प्राणः पृथग्वर्त्मात्मा संदेहो बहुलो बस्तिरेव रयिः पृथिव्येव पादौ ॥ छां० उ० ५।१८।२

इस वैश्वानर आत्माका द्युलोक सिर है, सूर्य नेत्र है, वायु प्राण है, आकाश

मध्यभाग है, जल मूत्र है, पृथिवी पांव है और अग्नि मुख है। ये इसके सात अंग हैं। मुण्डक उपनिषद्में ऐसा वर्णन है—

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी सूर्यचन्द्रौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्व-
भूतान्तरात्मा ॥ मुण्डक २।१।४

'अग्नि सिर है, सूर्यचन्द्र आंखें हैं, दिशाएं कान हैं, वेद वाणी है, वायु प्राण है, अन्तरिक्ष हृदय है, पांव पृथिवी है। यह सर्वभूतान्तरात्मा है।' यहां भी सात अंग हैं।

व्यक्तिमें 'सिर, नेत्र, प्राण, पेट, मूत्राशय, पांव और मुख' ये अथवा 'सिर, आंख, कान, वाणी, प्राण, हृदय, पांव' ये सात अंग है। इस वर्णन में थोडा हेर फेर है। कई स्थानोंमें आठ अवयवोंकी भी कल्पना है। परंतु शरीरमें मुख्य सात अंग गिनाये हैं। ये पञ्चमहाभूतों के पांच अंग हैं जैसे पृथ्वीका शरीरका स्थूल भाग हड्डी आदि, जलका भाग रक्त, मूत्र आदि, तेजका भाग नेत्र जाठर अग्नि आदि, वायुका भाग प्राण, आकाशका भाग श्रवणेन्द्रिय रूपसे इस शरीरमें है। इन पांचोंके साथ मन तथा बुद्धि ये मिलकर सात अंग होते हैं। ऊपरके वचनोंमें भी बहुत अंशसे यही कल्पना है। शरीरमें इन सात अंगोंकी कल्पना हरएकके अनुभवमें आनेवाली है। इन सात अंगोंसे यह आत्मा यहां कार्य करता हुआ दीखता है।

आत्माके उन्नीस मुख

इस आत्माके उन्नीस मुख ये हैं। **पांच ज्ञानेंद्रिय** - श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और नासिका ये हैं। **पांच कर्मेंद्रिय** - वाक्, हाथ, पांव, गुदा और शिश्न ये हैं। **पांच प्राण** - प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान ये हैं। **चार अन्तःकरण** - मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये चार अन्तर इंद्रिय है। मिलकर ये सब उन्नीस हैं। इनसे आत्मा सब भोग भोगता है इसलिये ये उन्नीस मुख आत्माके हैं ऐसा कहा जाता है।

स्वप्नस्थानोऽन्तः प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशति मुखः प्रविवि-क्तभुक् तैजसो द्वितीयः पादः ॥४॥

(स्वप्न-स्थानः अन्तःप्रज्ञः) स्वप्नकी अवस्थामें रहनेवाला और जिसकी प्रज्ञा अन्दरकी ओर होती है, सात अङ्गों और उन्नीस मुखोंवाला (प्रविविक्त-भुक् तैजसः द्वितीयः पादः) सूक्ष्मका भोग करनेवाला यह तैजस द्वितीय पाद है ॥ ४ ॥

यह जाग्रत् अवस्थामें कार्य करनेवाला आत्मा (स्थूलभुग्) स्थूल विश्वका भोग करता है। स्थूल भोगका अर्थ प्रत्यक्ष अनुभवमें आनेवाले बाह्य जगत्के विषय इतना समझना उचित है।

यह वैश्वानर है। यह विश्वका नेता है, यह विश्वमें रहनेवाला पुरुष है, सबका नायक है। अथवा (विश्व-नर) सब मनुष्य अथवा सब प्राणी इसीमें रहते हैं। इसका मुख-बाहू-पेट-पांव क्रमशः ब्राह्मण-क्षत्रिय वैश्य-शूद्र है। (ऋ० १०।९०) ऐसा वर्णन वेदमें अन्यत्र है। जैसे मानव वैसे ही पशुपक्षी भी इसीके शरीरमें रहते हैं। ऐसा यह सर्वभूतांतरात्मा है।

आत्माकी जाग्रत् अवस्थाका यह वर्णन है। पाठक इसका अनुभव जाग्रतिमें करें। अब आत्माकी दूसरी स्वप्न अवस्थाका वर्णन देखिये--

आत्माकी दूसरी अवस्था।

स्वप्न।

(४) जाग्रतिसे सुषुप्तिमें जानेके पूर्व स्वप्न अवस्था आती है। किसी समयके स्वप्न स्मरण रहते हैं और किसी समयके नहीं। परंतु सुषुप्तिके पूर्व तथा जाग्रतिके नंतर बीचमें न्यून वा अधिक स्वप्न अवस्था आती है यह निश्चित है। इस स्वप्न अवस्थामें प्रज्ञा अन्दर ही अन्दर (अन्तः प्रज्ञः) कार्य करती है। इसमें भी (सप्ताङ्गः) पूर्ववत् सात अंग ' पृथ्वी-आप-तेज-वायु-आकाश-मन-बुद्धि, ये व्यक्तिमें अंशरूप और विराट् देहमें विश्वरूप होते हैं।

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः॥५॥

(यत्र सुप्तः न कंचन कामं कामयते) जब यह सो जाता है, तब यह कुछ भी कामना नहीं करता, (न कंचन स्वप्नं पश्यति) न यह कोई स्वप्न देखता है, (तत् सुषुप्तं) यह सुषुप्त अवस्था है। (सुषुप्तस्थानः एकीभूतः) इस सुषुप्त अवस्थामें रहने-

---

ये स्वप्नावस्थामें सूक्ष्मांशरूपसे होते हैं। स्थूलरूपमें नहीं। तन्मात्रा के अंशोंके रूपमें ये सात अंश यहां होते हैं। मन बुद्धि भी अन्दर ही अन्दर कार्य करती है। पञ्चभूतोंकी पञ्चतन्मात्राएँ अन्दर ही अन्दर कार्य करती हैं। इस समय यह पूर्ववत् ही (एकोनविंशति- मुखः) उन्नीस मुखवाला रहता है। दश इंद्रियाँ, पंच प्राण और अन्तःकरण चतुष्टय मिलकर उन्नीस भोगसाधन हैं। ये ही आत्माके मुख हैं। ये स्वप्नमें अन्दर ही अन्दर कार्य करते हैं। इस समय यह (प्रविविक्त भुक्) सूक्ष्म भोग करता है। मनमें कल्पना करता है और मनमें ही भोगता है। किसी किसी समय इसका परिणाम स्थूल शरीर पर होता है। परंतु मनमें ही इस समयके व्यापार होते रहते हैं। इसलिये इसके भोग सूक्ष्म होते हैं। स्थूल वस्तुको यह इस समय प्राप्त कर ही नहीं सकता। इसका इस समय का स्वरूप तैजस होता है । यह अपने आन्तरिक तेज स्वरूपके प्रकाशसे स्वप्नमें प्रकाश देखता है। स्वप्नमें अनुभवमें आनेवाला प्रकाश इसका अपना होता है। यह द्वितीय पाद है। प्रत्येक मनुष्य स्वप्नका अनुभव लेता है। बुरे भले स्वप्न हरएक को होते हैं। कईयोंको स्मरण नहीं रहता इसलिये वे कहते हैं कि हमें स्वप्न नहीं आते। पर स्वप्न आते हैं उनका स्मरण उनको नहीं होता। जाग्रतिसे सुषुप्तिमें जानेका मार्ग ही स्वप्न-स्थानसे रहता है इस कारण गाढनिद्राके पूर्व स्वप्नका अनुभव होता है।

वाला एकीभूत हुआ हुआ (प्रज्ञानघनः एव आनन्दमयः) प्रज्ञानका एक ढेला जैसा और आनन्दमय; (आनन्दभुक्) आनन्दकाही भोग भोगनेवाला (चेतोमुखः प्राज्ञः तृतीयः पादः) चैतन्य रूपी यह प्राज्ञस्वरूप तृतीय पाद है ॥ ५ ॥

आत्माकी तीसरी अवस्था

सुषुप्ति = ब्राह्मीस्थिति

(५) जाग्रतिके पश्चात् स्वप्न और स्वप्नके पश्चात् सुषुप्ति अवस्था प्राप्त होती है। इस अवस्थाका महत्त्व विशेष है। सुषुप्ती अवस्था में " ब्राह्मी स्थिति " प्राप्त होती है ।

सुषुप्ति-समाधि-मुक्तिषु ब्रह्मरूपता

सुषुप्ति, समाधि और मुक्तिमें ब्रह्मरूपता होती है । मुक्तिमें सात्विक ब्रह्मरूपता, समाधि में राजसिक ब्रह्मरूपता और सुषुप्तिमें तमोगुणी ब्रह्मरूपता होती है। परंतु यह ब्रह्मरूपता है अतः इसका महत्त्व विशेष है । ब्रह्मरूपतामें अपना ही आनन्द अनुभवमें आता है । इस कारण सुषुप्तिमें, गाढनिद्रामें अपूर्व आनंद मिलता है। बल प्राप्त होता है, थकावट दूर होती है। रोग दूर होते हैं आरोग्य का संवर्धन होता हैं ।

(सुप्तः कंचन कामं न कामयते) गाढनिद्रामें यह मनुष्य कुछ भी कामना नहीं करता। कामना करेगा तो इसको गाढनिद्रा ही नहीं आयेगी । इसलिये निद्रामें कामना का होना असंभव है। इसी तरह (न कंचन स्वप्नं पश्यति) कुछ भी स्वप्न नहीं दीखता। यह भी वैसा ही है । यदि स्वप्न देखेगा तो इसे गाढनिद्रा ही नहीं मिलेगी । इसलिये गाढनिद्राके समय यह स्वप्न नहीं देखता यह सत्य बात है। कामना का संपूर्ण अभाव और स्वप्न न दीखना यही गाढ निद्राका स्वरूप है। यही सुषुप्ति है । यही ब्राह्मीस्थिति है ।

इस सुषुप्तिमें (सुषुप्तस्थानः एकीभूतः प्रज्ञानघनः) यह आत्मा अपनी सब शक्तियोंको इकट्ठा करके रखता है । जैसा अस्तके समय सूर्य अपने सब किरणोंको समेटता है वैसाही यह आत्मा जाग्रतिमें और स्वप्नमें फैले अपने

सब किरणोंको समेटता है और अपनेमें जमा करता है। अतः इस समय इसका सब तेज अपने अन्दर ही अन्दर इकट्ठा हुआ रहता है। जाग्रतिमें तथा स्वप्नमें इसको सर्वत्र भेदका, विभिन्नताका दर्शन होता है, पर सुषुप्तिमें वह सब एकतामें परिणत हुआ रहता है। वहां देखने के लिये कोई दूसरा नहीं रहता। इसलिये कहते हैं कि वह एक हुआ होता है। उस समय वह एक ही एक रहता है। इसलिये जब यह एक ही होता है, तब उस समय कौन किसे देखेगा, जब एक ही एक बना तब कौन किसे देखेगा? इस कारण सुषुप्तिमें इसे कुछ भी ज्ञान नहीं होता। इस समय ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान यह त्रिपुटी नहीं रहती है, एक ही एक होनेकी यह अवस्था है। अतः यह उच्चतम अवस्था है।

यह (आनन्दमयः आनन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञः) आनन्दमय, आनन्द-भोगनेवाला, चैतन्यमय ज्ञानस्वरूप होता है। इसलिये गाढ निद्राके बाद यह कहता है कि मैं आनन्दसे सोया, आराम से निद्रा ली। उस समय की प्रसन्नताका वर्णन इस तरह किया जाता है। पूर्ण आनन्द की यह अवस्था है। धनी-निर्धन, ज्ञानी–अज्ञानी, राजा-प्रजा, मालक-मज्दूर सभीको समान आनन्द इस अवस्थामें मिलता है। जागतिक उच्चनीचताका भेद इस अवस्था में नहीं रहता। ऐसी यह उच्च भूमिका है।

यह प्राज्ञ अवस्था है। केवल ज्ञान और केवल आनन्द इस अवस्थामें रहता है। आत्माका यह तृतीय पाद है। जाग्रति-स्वप्न सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओंमें आत्मा इस विश्वमें कार्य कर रहा है। मनुष्य शरीरमें रहता हुआ यह साधक इन तीन अवस्थाओंका अनुभव लेता है। यह व्यक्तिके अन्दर आनेवाला अनुभव है। पशुपक्षी भी निद्रामें इस भूमा अवस्थाको प्राप्त होते हैं। जीवमात्रके लिये यह आनन्ददायी अवस्था है।

रोगी मनुष्यको भी अत्यंत गाढ निद्रा आगयी तो उसको आराम प्राप्त होता है। गाढ निद्रा न आती हो तो वैद्य समझते हैं कि रोगीकी अवस्था भयानक और असाध्य है। पर गाढ निद्रा लगती है तब तक मृत्युभय नहीं ऐसा

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ॥ ६ ॥

(एषः सर्वेश्वरः) यही सबका ईश्वर है,(एषः सर्वज्ञः) यह सब जाननेवाला है, (एषः अन्तर्यामी) यह सबका अन्तर्यामी है, (एषः योनिः) यह सबकी उत्पत्तिका स्थान है, (भूतानां सर्वस्य प्रभव-अप्ययौ) सब भूतोंमेंसे प्रत्येककी उत्पत्ति और लयका यही स्थान है ॥ ६ ॥

सब मानते हैं। इतना महत्त्व इस गाढ निद्राका है।

मानसचिकित्साका तत्त्व

यदि शुभ विचार जाग्रतिके अन्तमें मनमें रहा तो वह स्वप्न और सुषुप्तिमें रहता है और शरीरपर सुयोग्य परिणाम करता है। रोगी मनुष्य यदि विश्वास पूर्वक मानने लग जाय कि इस साधनसे मैं रोग मुक्त हो जाऊंगा, और यदि यह विचार उसके मनमें रहा और गाढ निद्रामें कार्य करनेवाले अन्तर्मन में वह विश्वास सुस्थिर हुआ तो उससे उसको आरोग्य प्राप्त होता है क्योंकि इसे गाढ-निद्रामें अन्दरही अन्दरसे उस सविचार का सुपरिणाम उसके मन और शरीरपर होता है। मानस चिकित्साका यह तत्त्व है।

(६) इस सुषुप्तिमें इसको भूमावस्था प्राप्त होती है। सर्वान्तर्यामी आत्माके साथ यह एक हो जाता है। परमात्मा के साथ अथवा परब्रह्मके साथ एक रूप होता है। इसलिये इसको अभौतिक आनन्दकी प्रसन्नता मिलती है। और विश्वव्यापक भूमावस्था होती है। व्यक्तिभाव विस्मृत होकर समष्टिभाव इसे प्राप्त होता है। इसलिये कहा है कि (एषः सर्वेश्वरः) इस समय यह सर्वेश्वर होता है; (एषः सर्वज्ञः) यह सर्वज्ञ होता है, (एषः अन्तर्यामी) यह सबका अन्तर्यामी होता है, (एषः योनिः सर्वस्य) यह सबका उत्पन्न कर्ता है, और यह (भूतानां प्रभव-अप्ययौ) भूतोंकी उत्पत्ति और लय

आत्माकी स्वरूपस्थिति

नान्तः प्रज्ञं, न बहिष्प्रज्ञं, नोभयतः प्रज्ञं, न प्रज्ञानघनं, न प्रज्ञं, नाप्रज्ञम् । अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमाचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥ ७ ॥

(चतुर्थं मन्यन्ते) इस चतुर्थ-तुरीय-पादके विषय में ज्ञानी लोग मानते हैं कि यह (न अन्तः प्रज्ञं) केवल अन्दरकी ही प्रज्ञावाला नहीं है, (न बाहिः प्रज्ञं) न केवल यह बाहेर की ही प्रज्ञावाला है, (न उभयतः प्रज्ञं) तथा न यह केवल अन्दर बाहर की प्रज्ञावाला है, (न प्रज्ञानघनं) न यह केवल प्रज्ञाका ही केन्द्र है, (न प्रज्ञं न अप्रज्ञं) तथा न यह केवल प्रज्ञा ही है और नाही यह प्रज्ञाहीन है । [अर्थात् यह सब कुछ है और इससे भी विलक्षण है ।] यह (अ-दृष्टं) अदृश्य है, (अव्यवहार्यं) यह

करनेवाला भी यही है । क्योंकि निद्रामें व्यक्तिभावका लय और सर्वभावका अनुभव होता है । सर्वभाव का ही नाम ईश्वरभाव है । ब्रह्मभाव यही है । घटमें जो आकाश था वह विश्वाकाशमें मिल गया । यह है सुषुप्ति । परब्रह्म, परमात्मा, ईश्वरके सब गुण इस समय इसमें होते हैं । परंतु जाग्रति आते ही व्यक्तिभाव पुनः जागने लगता है और यह भूमा अवस्था दूर होती है । यही भूमावस्थाही समाधि योगसाधनसे साधककी इच्छानुसार प्राप्त होती और मुक्तिमें सदा स्थायी रहती है ।

परमात्मा की जाग्रति विश्वोत्पत्ति, और उसकी सुषुप्ति सृष्टिका प्रलय ऐसा कई मानते हैं । पर उसकी स्वप्नस्थितिकी कल्पना नहीं होती । यहां जो वर्णन है वह जीवात्माकी सुषुप्ति का है । पर वह विश्वात्मा पर भी लग सकता है ।

अव्यवहार्य है अर्थात् इसके साथ व्यवहारके क्षेत्रमें कार्य नहीं हो सकता, (अ-ग्राह्यं अ-लक्षणं) यह इंद्रिय ग्राह्य नहीं है, न इसका कुछ लक्षण होता है, (अ-चिन्त्यं अ-व्यपदेश्यं) यह चिन्तन करनेमें अशक्त है, इसका वर्णन करना अशक्य है, यह (एक-आत्म-प्रत्यय-सारं) एक आत्मा है, इस अनुभवका यह सार है, अर्थात् यह एक है, ऐसा कह सकते हैं, (प्रपञ्च-उपशमं) सब यह विश्वका प्रपञ्च उसमें जाकर शान्त होता है, (शान्तं शिवं अद्वैतं) यह शान्त है, शिव है, अद्वैत है अर्थात् यह एक ही एक है। (सः आत्मा, सः विज्ञेयः) यही आत्मा है और यही जानना चाहिये ॥ ७ ॥

---

(७) यह आत्माका चतुर्थ पाद है। यह न अन्दर ही अन्दर प्रज्ञावाला और नाही यह बाहर ही बाहर प्रज्ञावाला है अर्थात् न यह केवल अन्तःकरण का ही विषय है, और न यह बाह्य इंद्रियों का ही स्थूल विषय है। तथा यह दोनों ओर का हो केवल विषय नहीं है क्योंकि यह इससे भी विलक्षण है। न यह केवल बुद्धि का ही केन्द्र है, न केवल यह स्वयं ज्ञानीही है और न इसको कोई ज्ञानहीन अर्थात् जड ही कह सकते हैं। क्योंकि यह सब कुछ है और इससे विलक्षण भो है। यह अदृश्य, अव्यवहार्य, अग्राह्य, अलक्षण, अचिन्त्य, अवर्णनीय है। यह ' एक ही एकरस आत्मतत्त्व है, इस एक आत्मा का यह अनुभव है ' इतना अनुभव इस विषयमें विवेकी विद्वान कह सकते हैं। यह सब प्रपंच उससे प्रकट होकर अन्तमें उसीमें लीन भी होता है। और यह स्वयं शान्त, शिव और निर्द्वन्द्व (द्वन्द्व के भावसे रहित) है। आत्माके चतुर्थ पाद का यह स्वरूप है। यही आत्मा है और यही विशेष जानने योग्य है।

यहां (अचिन्त्यं अलक्षणं विज्ञेयं) जिसका चिन्तन नहीं हो सकता, जिसका लक्षण नहीं किया जा सकता, पर उसको जानना चाहिये। यह कार्य कठिन है, पर यह ज्ञान प्राप्त करनेसेही मनुष्यको शान्ति मिलेगी, उसका

कल्याण होगा और द्वन्दोंके आघात उस पर नहीं होंगे (शान्तं शिवं अद्वैतं) मनुष्य को शान्ति चाहिये, कल्याण चाहिये और द्वन्द्वोंसे- युद्धोंसे- मुक्ति चाहिये। यह लाभ है इसलिये यह ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। मनुष्य यह चाहता है। इसके ज्ञानसे ही यह सब प्राप्त हो सकता है।

यहां प्रश्न हो सकता है कि जो अचिन्त्य और अलक्षण है वह जाना कैसा जाय ? तो अपने ही अन्दर देखो, अपने अन्दर मन बुद्धि चित्त अहंकार आत्मा ये पदार्थ हैं इसमें किसीको भी संदेह नहीं हो सकता । ये सब अदृश्य, अतिसूक्ष्म हैं, पर इसके विषयमें मनुष्य को ज्ञान होता है ।अनुमान से, परिणामसे, तर्कसे यह बहुत कुछ जान सकता है । इसी तरह यद्यपि आत्माका ज्ञान पूर्णतया नहीं हो सकेगा, पर उसके विषयमें मनन करके जितना जान सकते हैं उतना जानना चाहिये ।

यद्यपि यह आत्मा अचिंत्य है तथापि वेदों और उपनिषदोंमें तथा अन्यान्य ग्रन्थोंमें उसीका वर्णन है, मनुष्य भी विचार द्वारा बहुत कुछ जान सकता है, परिणाम का विचार करनेसे उसकी शक्तिका मनन हो सकता है। प्रत्यक्ष ज्ञान न हो सकता हो, तो उसका ज्ञान अनुमान द्वारा हो सकता है। इसलिये अचिन्त्य कहने से मनुष्यके सभी ज्ञानके मार्ग बंद हैं ऐसा समझनेकी आवश्यकता नहीं है ।

उसका बहुत कुछ ज्ञान हो सकता है, इसीलिये इतने शास्त्र बने हैं। इतने सद्गुरु अपने शिष्योंको समझा रहे हैं, यह सब अज्ञेय को जानना ही है। अज्ञेय, अचिन्त्य आदि पद उसके ज्ञानका अभाव नहीं बता रहे हैं, पर संपूर्णतया उसका ज्ञान नहीं हो सकता, इतना ही भाव इन पदोंका है। संपूर्ण ज्ञान न हो, पर बहुत कुछ जाना जा सकता है । जो शास्त्रमें वर्णन है, और उनके मननसे जो अन्तःकरणमें स्फूर्त होता है वह ज्ञान मनुष्य प्राप्त कर सकता है और इतना ज्ञान कोई कम ज्ञान नहीं है और इसी ज्ञानसे साधक को शान्ति प्राप्त होगी, कल्याण होगा और द्वन्द्वके सब झंझट मिट जांयगे ।

आत्माके पादोंका ओंकारकी मात्राओंसे बोध

सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोंकारोऽधिमात्रं, पादा मात्रा, मात्राश्च पादा अकार उकार मकार इति ॥ ८ ॥

(सः अयं) वह यह आत्मा (अध्यक्षरं आत्मा) ओंकारके प्रत्येक अक्षरके रूपसे वर्णा गया है, तथा (अधिमात्रं ओंकारः) यह आत्मा मात्राओंके रूपसे ओंकार ही है। (पादाः मात्राः, मात्राः च पादाः) जो आत्माके पाद हैं वेही ओंकारकी मात्राएं हैं और जो

द्वन्द्व और युद्ध

द्वैत, द्वन्द्व ये भाव झगडे उत्पन्न करनेवाले हैं। विश्वमें और मानवव्यवहारमें येही भाव युद्धोंको उत्पन्न करते हैं। और इनसे संहार, नाश और नाना प्रकारकी आपत्तियां मनुष्योंको भोगनी पडती है। द्वैत, द्वन्द्व, युद्ध ये आपत्तियां सामाजिक और राष्ट्रीय आपत्तियां हैं। केवल वैयक्तिक आपत्ति ही यह नहीं है। केवल एकही व्यक्तिमें द्वैत अथवा द्वन्द्व नहीं हो सकता। इसके लिये दूसरेकी आवश्यकता है। इसी तरह शान्ति भी केवल वैयक्तिक नहीं है। यह भी सामाजिक गुण है। व्यक्तिमें शान्ति, राष्ट्रमें शान्ति और विश्वमें शान्ति स्थापन होनी चाहिये। तब सच्ची शान्ति स्थापन हो सकती है।

द्वैत, द्वन्द्वभावके दूर होनेके पश्चात् राष्ट्रीय और विश्वशान्तिका स्थापन होना संभव है। इस कारण (शान्तं शिवं अद्वैतं) इन तीन पदोंद्वारा सामाजिक, राष्ट्रीय और जागतिक, शान्ति, कल्याण और युद्धहीन स्थिति की सूचना दी है। पाठक इसका महत्त्व जानें और इस ज्ञान का परिणाम केवल वैयक्तिक सुधार ही है ऐसा संकुचित भाव न मानें। सब मानवों तक यह शान्ति कल्याण और निर्द्वन्द्व भाव पहुंचना चाहिये यही इस तत्त्व ज्ञान का ध्येय है।

ओंकारकी मात्राएं हैं वे आत्माके पाद हैं। ये ओंकारकी मात्राएं 'अ, उ, म' ये तीन हैं (और जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति' ये आत्माके तीन पाद क्रमसे उन मात्राओंके द्वारा बताये जाते हैं)॥ ८॥

---

(८) यह आत्मा है, वही जाग्रति, स्वप्न और निद्रामें कार्य करता है। इस ज्ञानको बताने के लिये आत्माके ३ या ४ पाद हैं ऐसी कल्पना की है। वास्तवमें सभी रूप आत्माका है। उसमें अंश की कल्पना नहीं हैं, परंतु समझानेके लिये यह चार अवस्थाओंमें प्रकट होता है ऐसा कहा है और वास्तवमें यह चार अवस्थाओंमें कार्य करता है यह अनुभव भी है। जाग्रति-स्वप्न-सुषुप्ति का अनुभव सब प्राणियोंको है, मनुष्य तो इन तीन अवस्थाओंमें बहुत कार्य करता है। वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और जागातिक कार्य यह मनुष्य जाग्रत अवस्थामें करता है। स्वप्न और सुषुप्ति का अनुभव भी इसको है। यह आत्माही इन तीनों अवस्थाओंमें कार्य करता है। यद्यपि जाग्रति-स्वप्न-सुषुप्ति का संबंध शरीरके साथ है तथापि इन अवस्थाओंमें आत्माकी ही प्रेरणासे कार्य होता रहता है। इसलिये कहा है कि ये आत्माके तीन पाद हैं।

अब चतुर्थ पादके विषयमें विचार करना चाहिये। वास्तवमें यहां चतुर्थ पाद की कल्पना ही है। यह स्वरूप स्थिति है। जैसा कोई एक विद्वान् कार्यालयमें कार्य करता है, इष्टमित्रों के साथ क्रीडा स्थानपर खेलता है और वही अपने घरमें बालबच्चों के साथ वार्तालाप करता है, इसीलिये इन तीन स्थानोंसे वह विभिन्न है। कार्यालयमें कार्य करनेवाला, क्रीडास्थानपर खेलनेवाला और बालबच्चों के साथ वार्तालाप करनेवाला इन तीनोंसे पृथक् होता है इसी तरह जाग्रति-स्वप्न-सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओंमें कार्य करनेवाला इन तीनों अवस्थाओंसे पृथक् है

यही इसकी चतुर्थ अवस्था निजी स्वरूप अवस्था है। यदि आत्माकी चार अवस्थाएं मानी जायगी, तो उसकी निजी पंचम अवस्था माननी पडेगी। अतः

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्रा, आप्तेरादिमत्वाद्वाऽऽप्नोति ह वै सर्वान् कामानादिश्च भवति य एवं वेद॥ ९ ॥

(जागरितस्थानः वैश्वानरः अकारः प्रथमा मात्रा) जाग्रत् अवस्था में अनुभवमें आनेवाला वैश्वानर स्वरूप आत्मा है और यह ओंकार की प्रथम मात्रा ' अ ' कार से दर्शाया जाता है। यह प्रथमपाद है। यह अकार (आप्तेः आदिमत्वात्) सब शब्दोंमें व्यापता है और यह सब अक्षरोंका आदि– प्रथम होनेवाला उच्चारण है। (यः एवं वेद) जो यह जानता है वह (सर्वान् कामान् आप्नोति) सब कामनाओंको प्राप्त करता है और (आदिः च भवति) सब में प्रथम-मुख्य-होता है ॥ ९ ॥

आत्माकी कार्य करनेकी अवस्थाएं जाग्रति-स्वप्न-सुषुप्ति ये तीन हैं और इन तीनों अवस्थाओंमें कार्य करनेवाले की स्वरूपावस्था चौथी है, जिसका नाम तुर्या है।

(९) जाग्रति की अवस्था अकारसे बतायी जाती है । सब वर्णोच्चारोंमें प्रथम वर्ण ' अ ' कार का उच्चारण मुखमें, कण्ठमें सबसे प्रथम होता है। इस अकारसे प्रथम और किसी अक्षर का उच्चारण मुखमें संभव ही नहीं है। अतः अकारको जाग्रति का प्रतिनिधि कहा है। शब्दब्रह्मका यह प्रारंभ है। अकार का उच्चारण होते ही शब्द सृष्टिकी उत्पत्ति हो रही है ऐसा ज्ञान हो जाता है। यही अकार आदिम, सबमें प्रथम वर्ण है। इसलिये इसके मनन से सबमें प्रथम, सबमें आदिम होनेका संदेश मिलता है। 'हे मनुष्य! तू अपने सब लोगोंमें प्रथम स्थानमें विराजमान होनेकी योग्यता प्राप्त कर, आदिम मुख्य पद पर विराजते रहो। (आदिः भवति) जो अकारके इस संदेशको प्राप्त करता है वह आदि बनता है, प्रथम स्थान में विराजता है।

अकारका दूसरा भी संदेश है (आप्तेः) यह अकार व्यापता है, सब

अक्षरोंमें अकार व्यापक है। अकार पर ही न्यूनाधिक दबाव पडनेसे वर्ण मालाके सब अक्षर बनते हैं, अर्थात् यह अकार सब वर्णमाला में, सब शब्दोंमें व्यापता है। जो इस अकारका यह संदेश जानता है वह सब कार्यों में व्यापता है, वह सबमें अपने आपको देखता है, वह आत्मवत् सबको देखता है। वह अपने आत्माको ही सब भूतोंमें देखता है-

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतानि आत्मा एव अभूत् ॥ ईश. ९

'जिस अवस्थामें सब भूत ज्ञानी के लिये आत्मा ही हुए।' यह अवस्था अकार की उपासनासे इसको प्राप्त होती है। यह अपने ज्ञानसे, बलसे, बुद्धिसे सबमें व्यापता है, जैसा गुरु अपने ज्ञानसे शिष्योंमें व्यापता है। राजा अपनी संरक्षक शक्तिसे अपने राष्ट्रमें व्यापता है। बुद्धिमान अपनी बुद्धिसे संमति प्रदानादि द्वारा जनतामें व्यापता है। इस तरह यह व्यापता है, इस कारण यह प्रथम स्थानमें विराजता है। सबसे श्रेष्ठ होता है। इस तरह यह व्यापक होकर सब कामनाओंको प्राप्त करता है। इसलिये इसको 'वैश्वा-नर' कहते हैं, यह विश्वका नेता होता है।

अकारके संदेश

अकारके उपदेशसे निम्नलिखित संदेश मिलते हैं। जो अकारका संदेश अपनाता है वह-

१ वैश्वानरः (विश्व-नरः) - विश्वका नेता होता है,

२ आप्तिः- (व्याप्नोति) - वह अपनी शक्तिसे विश्वको व्यापता है,

३ आदिमत्वं- (आदिः भवति) - वह सबमें प्रथम होता है,

४ सर्वान् कामान् आप्नोति- वह अपनी शक्तियोंसे सब कामनाओंको प्राप्त करता है,

ये ओंकारके आद्याक्षर अकार की उपासना के फल हैं, पाठक इनको स्मरण रखें, यहां सबमें प्रथम उच्च बनना है, यहां विश्वत्याग नहीं है, पर विश्वमें प्रथम और उच्च होनेकी योग्यता प्राप्त करनी है।

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वा-द्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्ततिं, समानश्च भवति, नास्याब्रह्म-वित् कुले भवति य एवं वेद ॥१०॥

(स्वप्नस्थानः तैजसः उकारः द्वितीया मात्रा) स्वप्न अवस्थामें कार्य करनेवाला तैजस स्वरूप आत्मा है, यह ओंकारके द्वितीय 'उ' इस अक्षरसे दर्शाया जाता है। यह आत्माका द्वितीय पाद है (उत्कर्षात् उभयत्वात् वा) यह उत्कर्ष का द्योतक है और दोनों ओर का संबंध बतानेवाला है, दोनों को जोडनेवाला है। (यः एवं वेद) जो यह जानता है वह (ज्ञानसंततिं उत्कर्षति) ज्ञान की परंपराको बढाता है और वह (समानः भवति) समदृष्टिवाला होता है और (अस्य कुले अब्रह्मवित् न भवति) इसके कुलमें ब्रह्मज्ञान हीन संतान नहीं होती ॥ १० ॥

---

(१०) दूसरी अवस्था स्वप्न की है, यह जाग्रतिके पश्चात् आती है। जाग्रति और सुषुप्तिको जोडनेवाली यह अवस्था है। दोनों पक्षोंको जोडना यहां सूचित होता है, विरुद्ध पक्षोंका मेल यहां होता है, संगठन की सूचना यहां मिलती है। इसका दर्शक 'उ' कार यहां ओंकारका मध्य अक्षर है। यह 'उ' भी जोडनेवाला अक्षर है, इस अक्षरका स्थान ओंकारके मध्यमें है। मुखमें भी यह उ अन्तिम स्थानमें उच्चारा जाता है और इसके पश्चात् म् कार ही बोला जाता है, देखिये–

म् (नासिका)

(कण्ठ) अ — उ (ओष्ठ)

मुखमें कण्ठमें 'अ' कार का उच्चारण होता है 'उ' कारका उच्चारण होठोंमें होता है, यह मुखमें अन्तिम उच्चारण है, जैसा अकारके पूर्व कोई वर्ण नहीं उच्चारा जाता, वैसा ही उकारके पश्चात् भी मुखसे कोई वर्ण

उच्चारा जाना असंभव है। क्योंकि होंठ बंद ही हो जाते हैं। फिर केवल नाकही खुला रहता है, जिससे ' म ' कारका उच्चारण होता है। इस तरह ' अ-उ-म् ' में ' अ और म ' को जोडनेका कार्य ' उ ' करता है। वास्तवमें यह ऐसा है-

म् (सुषुप्ति)

(जाग्रति) अ उ (स्वप्न)

जाग्रति और स्वप्नसे सुषुप्ति अवस्था ऊंची है। स्वप्न तो जाग्रतिका ही एक छाया जैसा रूप है। स्वप्नावस्था तैजस है। इसमें अपना निजतेज प्रकाशता है। अपने तेजसे मानस सृष्टि इस अवस्थामें निर्माण की जाती है। और उसका दर्शन अपने ही तेजसे यह आत्मा करता है। यहां बाहरका तेज नहीं आता, परंतु अपना ही निज तेज विविधरूपसे दर्शाता है।

उकारके मनन का फल

उकारकी उपासना का फल भी विलक्षण है। यह अब देखिये-

१ **उत्कर्षात्**- यह उत्कर्ष कराता है, अभ्युदयका साधक होता है,

२ **उभयत्वात्**- दोनों का संबंध जोडता है, मिला देता है, जोड देता है, संगठन करता है, विपक्षियोंको एक पक्षमें लाता है,

३ **ज्ञान संततिं उत्कर्षति**- ज्ञानविज्ञान को परंपराका उत्कर्ष करता है, पठन पाठन के द्वारा ज्ञानका प्रसार करता है, विद्याका प्रचार करता है,

४ **समानः भवति**- समबुद्धिसे युक्त होता है, (देखो गीता. अ. २ समबुद्धि)

५ **अस्य कुले अब्रह्मवित् न भवति**- इसके कुलमें ब्रह्मज्ञानहीन मनुष्य नहीं उत्पन्न होता। इसके कुलमें ब्रह्मज्ञानी ही उत्पन्न होते हैं। कुलमें उत्पन्न होनेका अर्थ वंशमें उत्पन्न होना है। और वंश तो कमसे कम ८।१० पुश्तोंका होता है। इतने पुत्रपौत्रोंमें सब ब्रह्मज्ञानी ही इसके वंशमें होते हैं।

इसमें भी राष्ट्रोन्नतिका बडा कार्यक्रम है। यहां भी विश्वका त्याग नहीं है, परंतु जगत्का सुधार है।

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपितेर्वा, मिनोति ह वा इद ँ सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ॥११॥

(सुषुप्तस्थानः प्राज्ञः मकारः तृतीया मात्रा) सुषुप्त अवस्थामें रहने वाला ज्ञानमय आत्मा ओंकारकी तृतीय मात्रा है और ' म ' कारसे दर्शाया जाता है, यह आत्माका तृतीय पाद है। (मितेः अपितेः वा) यह मिनता है अथवा अन्ततक पहुंचाता है। (यः एवं वेद) जो यह जानता है वह (इदं सर्वं मिनोति, अपीतिः च भवति) इस सर्व को मिनता है और अन्तको पहुंचाता है ॥ ११ ॥

समबुद्धि और समव्यवहार

(समानः भवति) समबुद्धिवाला होता है। सम बुद्धि का अर्थ ब्रह्मबुद्धि है। ' निर्दोषं हि समं ब्रह्म ' (गी.) ब्रह्म सर्वत्र सम है। सर्वत्र ब्रह्म बुद्धिका धारण करना, सबको ब्रह्मभावसे देखना, सबके साथ वह ब्रह्म है ऐसा मानकर व्यवहार करना यहां इष्ट है। इस तरह की समबुद्धि इस ज्ञान से होती है। यह समता, निर्वैरता, निर्द्वन्द्वता युद्धों और संघर्षोंको हटानेवाली है। राजा-प्रजा, पूंजीपति– कर्मचारी आदि द्वन्द्वोंमें समभाव स्थापन करना, दोनोंको समभावसे देखनेका तात्पर्य ये दोनों ब्रह्मके रूप हैं ऐसा मानना है। जिस समय राजा और प्रजा ये दोनों ब्रह्मके ही रूप हो जांयगे तो उनका संघर्ष उसी समय दूर होगा और वे दोनों परस्पर एक भावसे युक्त होंगे, परस्पर सहायक, पोषक, पूरक तथा सम होंगे। ये दोनों एक ही जीवनके दो पहलू होंगे और इनका जीवन एक होनेसे इनके अन्दरका द्वन्द्वभाव दूर होगा। इसी तरह अन्यान्य द्वन्द्वोंके विषयमें समझना चाहिये।

भगवद्गीतामें भी यही समबुद्धि वर्णन की है। यह समभाव राष्ट्रीय तथा जागतिक शान्तिके लिये अत्यंत आवश्यक है। दो दलोंमें मेल करना इसी समभावसे साध्य हो सकता है।

(११) तृतीय मात्रा ' म ' कार की है। इसमें जाग्रति का व्यवहार नहीं,

स्वप्नका तैजस रूप नहीं, पर यहां केवल आन्तरिक आनन्दकी अवस्था है। जाग आनेपर यह कहता है कि मैं आनन्दसे सोया था, बडा सुख हुआ, थकावट गयी, उत्साह आया। ऐसी यह अवस्था अपनी निज शक्ति के अनुभव की है। केवल ज्ञानमयी यह अवस्था है। इसलिये इसे 'प्राज्ञ' अवस्था कहते हैं। जाग आनेपर यह कहता है कि गाढ निद्रामें मैंने सुख प्राप्त किया। इतना ज्ञान इसे इस समय रहता है। आत्मा स्वयं ज्ञान स्वरूप है उसका निजस्वरूप ही इस समय केवल ज्ञानरूपसे प्रकट होता है।

यद्यपि यह अवस्था तमोगुणी है तथापि यह ब्राह्मी स्थिति है। सुषुप्ति-समाधि-मुक्तिमें ब्रह्मरूपता होती है। यह क्रमसे तामस-राजस-सात्विक है। समाधिमें तथा मुक्तिमें ब्राह्मीस्थितिका आनन्द अनुभवमें आता है, मैं आनन्दका उपभोग करता हूं यह भान समाधिमें रहता है। सुषुप्तिमें वैसा कोई भान नहीं रहता, परंतु उस समय आनन्द प्राप्त किया यह अनुभव जाग आनेपर यह कहता है, इसलिये सुषुप्तिमें भी यह आनन्द लेता ही है।

सुषुप्तिमें यद्यपि इस सोनेवालेकी कोई हलचल नहीं होती, तथापि इसको इस समय बडे लाभ होते हैं, थकावट दूर होती है, नूतन उत्साह मिलता है, बुद्धि और मन सामर्थ्य युक्त होता है, शरीरके दुःख अनुभवमें नहीं आते ऐसे अनेक लाभ इस अवस्थामें प्राप्त होते हैं। इस अवस्थामें जीवात्मा-परमात्माकी एकरूपता होती है। इसीलिये इसको आनन्द प्राप्ति, शक्तिकी प्राप्ति और सुखकी प्राप्ति होती है। परमात्माकी शक्ति इसमें संचार करती है।

मानस चिकित्सा

सोनेके पूर्व जो विचार इसके मनमें रहेंगे वही विचार सुषुप्तिके समय कार्य करते रहते हैं, इस नियमके अनुसार मानस चिकित्सा होती है। एक मनुष्य रोगी हुआ है, यदि सोनेके समय ऐसा विचार उसके मनमें आजाय कि "मैं अच्छा आरोग्य संपन्न हो रहा हूं" तो यह विचार उसके सुप्त मनमें कार्य करता

रहेगा और उसको आरोग्य देगा। निद्रामें भी उसको संबोधित करके आरोग्यके विचार उसके मनमें डाले जा सकते हैं जो उसे आरोग्य देनेमें सहायक होते हैं। जाग्रतिका मन स्तब्ध होता है और अन्तर्मन जागने लगता है जो यह कार्य करता है।

आरोग्यके विचारोंके स्थानपर यदि इसके मनमें निर्बलताके विचार रहे तो वे भी वैसा ही घोर परिणाम इस पर करते हैं। इसलिये " मैं निर्बल हूं, मैं क्षणभंगुर हूं, मैं पापी हूं, मैं असमर्थ हूं," ऐसे कुविचार कभी मनमें नहीं रखने चाहिये। ये विचार मनमें रहे तो वे वैसा ही हीनताका दुष्परिणाम करते हैं और मनुष्य अधोगतिको प्राप्त होता है।

यह सब (मितेः, मिनोति ह वा इदं सर्वं) यह मिनता है, माप लेता है, प्रत्येक का परिणाम यह देखता है, उसकी योग्यता यह जानता है। मिनना, तोलना, मापना यह प्रमाण से होता है। तोलनेके प्रमाण निश्चित होते हैं जिनसे सब पदार्थ तोले जाते हैं। इस तरह यह साधक इस समय सब का मापन कर सकता है क्योंकि यह सुषुप्त अवस्था में ईश्वरकी भूमा अवस्थामें पहुंचता है। जैसा ईश्वर सब को देखता, मिनता और सबका परिणाम देखता है, वैसा यह करता है।

मंत्र ६ में (एष सर्वेश्वरः, एष सर्वज्ञः) कहा है कि यह इस अवस्थामें सर्वेश्वर है और सर्वज्ञ होता है। जो सर्वज्ञ होता है वही सबका परिणाम कर सकता है। इस कारण यह इस अनुभवमें सबका परिमाण करनेका सामर्थ्य अपने अन्दर धारण करता है। इस अवस्थामें यह सामर्थ्यवान् होता है।

(अपितेः, अपीतिश्च भवति) यह इस समय अन्ततक पहुंचाता है और स्वयं अन्तको प्राप्त करता है। अन्तको पहुंचानेका भाव यह है कि यह पूर्णत्वको प्राप्त होता है, पूर्णत्वको पहुंचता है। इससे अधिक और कुछ प्राप्तव्य इसके लिये नहीं रहता। उन्नतिकी परिसीमा यह इस समय प्राप्त करता है। ईश्वरमें मिल जाता है। परम आनंद और महाशक्ति प्राप्त होती है।

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोंकार आत्मैव सं विशत्यात्मनात्मानं य एवं वेद ॥१२॥

शान्ति पाठः ।

भद्रंकर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

॥ इति माण्डूक्योपनिषत्समाप्ता ॥

(अमात्रः चतुर्थः अव्यवहार्यः) मात्रारहित आत्माका चतुर्थ पाद है, यह व्यवहारमें नहीं आता, (प्रपञ्चोपशमः शिवः) यह प्रपंच को अन्ततक लेजाकर शान्त करनेवाला कल्याणकारी (अद्वैतः) वैसा दूसरा कोई नहीं, यह एक ही एक है वह इस तरह (एवं ओंकारः आत्मा) ओंकार रूप आत्मा है (यः एवं वेद) जो यह जानता है वह (आत्मना आत्मानं संविशति) अपने आत्मरूप से आत्मरूपमें प्रवेश करता है ॥ १२ ॥

पाठक यहां पूछेंगे कि यदि यह इस सुषुप्त अवस्था में ब्राह्मीस्थितिको प्राप्त होता है, ईश्वरभावको प्राप्त करता है, तो फिर वह स्थिति सुषुप्तिके बाद क्यों नहीं रहती ? इसका उत्तर इतना ही है कि समाधि और मुक्तिमें यह होगा। योगसाधन करनेसे यह उच्च अवस्था प्राप्त होगी । अनायास प्राप्त होनेवाली सुषुप्ति है। प्रयत्नसे प्राप्त होनेवाली समाधि और मुक्ति है, इसलिये उन अवस्थाओंमें यही ब्राह्मीस्थिति शाश्वत टिक सकती है । साधक प्रयत्न करे और उन अवस्थाओंको प्राप्त करे ।

(१२) जाग्रति, स्वप्न, सुषुप्तिमें यह आत्मा कार्य करता है इसीलिये इन अवस्थाओंसे भिन्न इस आत्मा का स्वरूप है, जो (अव्यवहार्यः) व्यव-

हारकी कक्षामें नहीं आता, (प्रपञ्चोपशमः) इस प्रपञ्चको ब्रह्ममें लीन करता है, ब्रह्मरूप बनाता है और (शिवः) कल्याण स्वरूप है, अमंगल भाव इसमें नहीं हैं, तथा यह (अ-द्वैतः) एक है, सबका एक आत्मा है। इस तरह यह ओंकार आत्माका दर्शक है। सुषुप्तिमें यह आत्मा अपने रूपमें प्रवेश करता है। शुद्ध स्वरूपमें यह रहता है।

यह आत्माका स्वरूप है। जाग्रति, स्वप्न और सुषुप्तिमें कार्य करनेवाला आत्मा ही इन अवस्थाओंसे भिन्न है और जो नित्य आनन्द स्वरूप है। यही उस आत्माकी स्वरूपस्थिति है जो सबको जानने योग्य है।

' हम कानोंसे अच्छे उपदेश सुनें, आंखोंसे अच्छे दृश्य देखें, स्थिर सुदृढ शरीरसे जब तक आयु होगी तब तक हम विबुधोंका हित करते रहें। '

व्यक्तिमें शान्ति हो, राष्ट्रमें शान्ति रहे और विश्वमें शान्ति स्थापित हो.

यहां माण्डूक्य उपनिषद समाप्त हुई।

' **भद्रं कर्णेभिः** ' यह इस उपनिषदका शान्तिमंत्र यहां पढना चाहिये। व्यक्तिमें शान्ति, राष्ट्रमें शान्ति और विश्वमें शान्ति स्थापन हो।
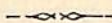
माण्डूक्य उपनिषद्ने क्या कहा ?

माण्डूक्य उपनिषद् 'आत्मा' का स्वरूप बताने के लिये है। प्रथम ही उसने कहा है कि—

सबका आधार आत्मा

"जो यह सब दीखता है, भूतकालमें जो था, वर्तमान कालमें जो है और भविष्यकालमें जो होगा, तथा इन तीनों कालोंके अतीत जो भी कुछ है वह सब एक ही तत्त्व है, यही ब्रह्म, यही आत्मा और यही सब कुछ है।"

"जाग्रतीमें यही आत्मा कार्य करता है, स्वप्नमें यही कल्पना करके नाना प्रकारके स्वप्न देखता है और गाढनिद्रामें यही अपने रूपमें आनन्दमें रहता है। इन तीनों अवस्थाओंमें तीनों अनुभव लेनेके कारण यह उन अवस्थाओंसे भिन्न है, अतः इसकी स्वरूप स्थिति तुर्या अवस्थासे बतायी जाती है। तथापि जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिका अनुभव लेनेवाला यही है।"

"यह आत्मा न रहा तो जाग्रति स्वप्न सुषुप्ति कुछ भी नहीं होगा। इसी लिये तीनों अवस्थाओंमें जो भी कुछ है वह यही आत्मा है, यही ब्रह्म है ऐसा कहा है।"

ज्ञानसे क्या करना है ?

प्रत्येक मनुष्य जाग्रतिका अनुभव करता है, स्वप्न और गाढनिद्राका भी अनुभव प्रत्येक मनुष्यको प्राप्त है। मनुष्य इसका विचार करे और समझे कि इन अवस्था-ओंमें यह मेरा आत्मा ही कार्य कर रहा है। मैं ही इन तीनों अवस्थाओंमें कार्य कर रहा हूं। अर्थात मेरे आधार पर ये तीनों अवस्थाएं हैं। मेरे न रहनेसे इनमेंसे कोई अवस्था नहीं रहेगी।

अपने आत्माकी यह शक्ति है जो जाग्रति स्वप्न और सुषुप्ति करती है और इनसे ऊपरकी अवस्थाका भी अनुभव लेती है ।

जाग्रतिमें जितने भी कार्य व्यवहार हम करते हैं वे आत्माकी शक्तिसे ही होते हैं। यही आत्मा इसी कारण सबका आधार है। यह जो चाहता है वही यहां बनता है। इस अपनी शक्ति को जानना मनुष्यके लिये अत्यंत आवश्यक है। इसका ज्ञान होनेसे मनुष्य अवनत नहीं होता। वह जानता है कि जाग्रत-स्वप्नके सब व्यवहार मेरी शक्तिसे होते हैं, यदि यह सत्य है, तो मैं यहां अच्छे ही विचार रखूंगा, अच्छे ही कर्म करूंगा और निःसंदेह अभ्युदय हो ऐसा ही यहां कार्य करूंगा। मेरी अनुमतिके विना यहां कुछ भी नहीं बनेगा। किसी अन्यका अधिकार मैं यहां चलने नहीं दूंगा।

इस तरहका सुदृढ संकल्प करनेसे इसका प्रभुत्व यहां स्थापित होगा। जो होनेके लिये ही यह ज्ञान कहा है। इसीका नाम ' स्वराज्य ' है। अपने ऊपर अपना प्रभुत्व रहना ही सच्चा स्वराज्य है।

ज्ञानका फल

"इस तरह अपने अन्दर अपना प्रभुत्व सिद्ध हुआ, तो वह अपनी सदिच्छासे अपनी शुभ कामनाओं की सुफलता प्राप्त करता है। प्रथम स्थानमें विराजता है, विश्वका नेता होता है, अपने विचारसे विश्वको व्यापता है। अभ्युदय प्राप्त करता है, विभक्तों को मिला देता है, ज्ञान परंपरा अविच्छिन्न चलाता है। इसके कुलमें कोई अज्ञानी न रहे ऐसा सुशिक्षाका प्रचार करता है, और सब कार्य यशस्वितासे सफल सुफल और निर्विघ्न करता है।

समाज ऐसा बने कि हम कहीं भी जांय तो वहां अच्छी बातें सुनें, अच्छे दृश्य देखें, नीरोग और बलवान शरीर हो और उनसे श्रेष्ठोंकी सेवा होती रहे। व्यक्तिमें शान्ति, राष्ट्रमें शान्ति और विश्वमें शान्ति हो।"

यह इस माण्डूक्य उपनिषद्का सार है। और इसका ध्येय यह है। पाठक इसको समझें, जानें, मनन करके जीवनमें लावें और कृतकृत्य बनें।

माण्डूक्य उपनिषद् की

विषयसूची

मुद्रक और प्रकाशक– भारत मुद्रणालय, किल्ला–पारडी, (जि. सूरत)